ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

IJRTSM
INTERNATIONAL JOURNAL OF RECENT TECHNOLOGY SCIENCE & MANAGEMENT

"न्यायिक सक्रियता और न्यायिक अतिक्रमण के बीच संतुलन: भारतीय संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण"

भरत कुमार नेमा [1], डॉ. एल. पी. झारिया [2], डॉ. धनंजय कुमार वर्मा [3]
[1] *पी एच.डी. शोधार्थी, बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल*
[2] मध्य प्रदेश भोज मुक्त विश्वविद्यालय, भोपाल, मध्य प्रदेश
[3] *गवर्नमेंट एम. एल. बी. गर्ल्स कॉलेज, भोपाल, मध्य प्रदेश*

सारांश

भारतीय संविधान एक जीवंत दस्तावेज़ है, जो समय और परिस्थितियों के साथ विकसित होता रहा है। इसका मूल उद्देश्य एक ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित करना है जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित हो। इन संवैधानिक आदर्शों की रक्षा और अनुपालन में न्यायपालिका की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। भारत में न्यायपालिका केवल संविधान की व्याख्याकार संस्था नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक मूल्यों की संरक्षिका के रूप में भी देखी जाती है। विशेष रूप से जनहित याचिकाओं (Public Interest Litigations) के माध्यम से न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) ने समाज के वंचित और हाशिए पर खड़े वर्गों को न्याय दिलाने में क्रांतिकारी भूमिका निभाई है।

न्यायिक सक्रियता के माध्यम से न्यायपालिका ने पर्यावरण संरक्षण, मानवाधिकार, लैंगिक समानता, शिक्षा का अधिकार, स्वच्छता और पारदर्शिता जैसे अनेक क्षेत्रों में सरकार को उत्तरदायी बनाया है। Kesavananda Bharati v. State of Kerala, Maneka Gandhi v. Union of India, Vishaka v. State of Rajasthan तथा Olga Tellis v. Bombay Municipal Corporation जैसे ऐतिहासिक निर्णयों ने न्यायपालिका की प्रगतिशील भूमिका को रेखांकित किया है। इन निर्णयों ने यह सिद्ध किया कि संविधान एक स्थिर दस्तावेज़ नहीं, बल्कि एक गतिशील और जीवंत व्यवस्था है जो समय के साथ सामाजिक न्याय की दिशा में अग्रसर रहती है।

हालाँकि, न्यायिक सक्रियता की यह प्रक्रिया कभी-कभी न्यायिक अतिक्रमण (Judicial Overreach) का रूप भी धारण कर लेती है, जब न्यायपालिका विधायिका या कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप करने लगती है। यह प्रवृत्ति सत्ता पृथक्करण (Separation of Powers) के संवैधानिक सिद्धांत को चुनौती देती है और लोकतांत्रिक संतुलन को प्रभावित करती है। Aravali Golf Club Case तथा Supreme Court Advocates-on-Record Association Case जैसे उदाहरणों में यह प्रश्न उठाया गया कि क्या न्यायपालिका अपने संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन कर रही है।

इस शोध पत्र में न्यायिक सक्रियता और न्यायिक अतिक्रमण के बीच संतुलन की आवश्यकता का गहन विश्लेषण किया गया है। अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि भारतीय न्यायपालिका किस प्रकार संविधान के रक्षक के रूप में अपनी भूमिका निभाते हुए भी सत्ता पृथक्करण के सिद्धांत का सम्मान बनाए रख सकती है। साथ ही, यह शोध न्यायिक आत्मसंयम (Judicial Restraint), उत्तरदायित्व और पारदर्शिता के माध्यम से एक संतुलित न्यायिक व्यवस्था की दिशा में संभावित सुधारों पर भी प्रकाश डालता है।

मुख्य शब्द: *न्यायिक सक्रियता, न्यायिक अतिक्रमण, भारतीय संविधान, जनहित याचिका, सत्ता पृथक्करण, न्यायिक आत्मसंयम।*

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

I. प्रस्तावना

1.1 विषय की पृष्ठभूमि और महत्त्व

भारतीय संविधान एक जीवंत और गतिशील दस्तावेज़ है, जिसका उद्देश्य नागरिकों के लिए एक ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित करना है जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शों पर आधारित हो। भारतीय लोकतंत्र की सफलता का सबसे बड़ा आधार उसकी स्वतंत्र न्यायपालिका है, जो संविधान के रक्षक (Guardian of the Constitution) और व्याख्याकार (Interpreter) के रूप में कार्य करती है।

संविधान निर्माताओं ने विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच सत्ता पृथक्करण (Separation of Powers) का सिद्धांत अपनाया, ताकि प्रत्येक अंग अपने अधिकार क्षेत्र में रहते हुए एक-दूसरे पर नियंत्रण और संतुलन बनाए रखे। परंतु व्यवहार में यह विभाजन पूर्णतः कठोर नहीं है; तीनों अंग एक-दूसरे से सहयोगात्मक रूप से भी जुड़े हुए हैं।

भारत में जब कभी शासन की अन्य शाखाएँ अपनी जिम्मेदारियों के निर्वहन में विफल रही हैं, न्यायपालिका ने हस्तक्षेप करते हुए सामाजिक न्याय और नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए सक्रिय भूमिका निभाई है। यही सक्रियता "न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism)" के रूप में जानी जाती है।

न्यायिक सक्रियता ने भारत में संविधान की आत्मा को जीवंत बनाए रखा। Kesavananda Bharati v. State of Kerala (1973) में सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के मूल ढांचे (Basic Structure Doctrine) की अवधारणा प्रस्तुत की, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि संसद संविधान में संशोधन करते समय उसकी मूल भावना को नष्ट नहीं कर सकती। इसी प्रकार Maneka Gandhi v. Union of India (1978) में न्यायपालिका ने अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए "जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता" को व्यापक अर्थ प्रदान किया, जिससे नागरिक स्वतंत्रता के नए आयाम विकसित हुए।

Vishaka v. State of Rajasthan (1997) में न्यायालय ने महिलाओं के कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से सुरक्षा के लिए दिशा-निर्देश जारी किए, जबकि उस समय इस विषय पर कोई कानून अस्तित्व में नहीं था। इन मामलों ने न्यायपालिका को सामाजिक सुधार की दिशा में अग्रसर संस्था के रूप में स्थापित किया।

किन्तु, न्यायिक सक्रियता की यह प्रवृत्ति कभी-कभी "न्यायिक अतिक्रमण (Judicial Overreach)" के रूप में भी देखी जाती है, जब न्यायपालिका नीति निर्माण या प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप करने लगती है। Aravali Golf Club v. Chander Hass (2007) और Divisional Manager, Aravali Golf Club v. Chander Hass जैसे मामलों में न्यायालय ने स्वयं स्वीकार किया कि न्यायपालिका को शासन के अन्य क्षेत्रों में अत्यधिक दखल नहीं देना चाहिए। इसी प्रकार Supreme Court Advocates-on-Record Association v. Union of India (2015) में न्यायालय द्वारा "National Judicial Appointments Commission (NJAC)" को निरस्त करने के निर्णय ने भी विधायिका और न्यायपालिका के बीच टकराव की स्थिति उत्पन्न की।

इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका की भूमिका पर निरंतर विमर्श चलता रहा है — कि वह संविधान की संरक्षिका बनी रहे, परंतु शासन संचालन में अतिक्रमण न करे।

1.2 भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका की भूमिका

भारत में न्यायपालिका को न केवल विवाद निवारण संस्था के रूप में देखा जाता है, बल्कि यह संवैधानिक मूल्यों की संरक्षिका भी है। अनुच्छेद 32 और 226 नागरिकों को यह अधिकार देते हैं कि यदि उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है तो वे सीधे सर्वोच्च या उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकते हैं। इस प्रावधान ने न्यायपालिका को नागरिक अधिकारों की रक्षा में सबसे प्रभावी संस्था बना दिया है।

भारत में न्यायपालिका ने कई बार शासन के अन्य अंगों को उनके संवैधानिक दायित्वों की याद दिलाई है। Hussainara Khatoon v. State of Bihar (1979) में न्यायालय ने त्वरित न्याय को मौलिक अधिकार घोषित किया, जिससे हजारों अंडरट्रायल कैदियों की रिहाई का मार्ग प्रशस्त हुआ। M.C. Mehta v. Union of India के विभिन्न मामलों में न्यायालय ने पर्यावरण संरक्षण को नागरिक अधिकारों से जोड़ा। Prakash Singh v. Union of India (2006) में पुलिस सुधारों को लागू करने के निर्देश दिए गए, जबकि Vishaka Guidelines (1997) ने कार्यस्थल पर महिलाओं की गरिमा की रक्षा की।

इन सभी निर्णयों ने यह सिद्ध किया कि न्यायपालिका केवल कानून की व्याख्या करने वाली संस्था नहीं, बल्कि समाज में नैतिक और संवैधानिक चेतना फैलाने वाली शक्ति भी है।

हालाँकि, इस सक्रियता की सीमा निर्धारित करना आवश्यक है। लोकतांत्रिक प्रणाली में यह संतुलन बेहद संवेदनशील है — जहाँ न्यायपालिका निष्क्रिय रहकर नागरिक अधिकारों की रक्षा न कर पाए, वहाँ लोकतंत्र खतरे में पड़ सकता है, और जहाँ वह अपने अधिकारों से आगे बढ़ जाए, वहाँ संवैधानिक संतुलन भंग हो सकता है।

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

1.3 अनुसंधान के उद्देश्य और प्रमुख प्रश्न

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में न्यायिक सक्रियता और न्यायिक अतिक्रमण के बीच संतुलन की आवश्यकता का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया जाएगा—

1. न्यायिक सक्रियता और न्यायिक अतिक्रमण की अवधारणाओं में क्या मूलभूत अंतर है?
2. क्या भारतीय न्यायपालिका ने समय-समय पर अपनी संवैधानिक सीमाओं का अतिक्रमण किया है?
3. न्यायिक हस्तक्षेप की वैध सीमा क्या होनी चाहिए ताकि लोकतांत्रिक संतुलन बना रहे?
4. न्यायिक आत्मसंयम (Judicial Restraint) का क्या महत्व है, और इसे भारतीय संदर्भ में कैसे लागू किया जा सकता है?
5. भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के बीच संस्थागत संतुलन बनाए रखने के लिए क्या सुधारात्मक कदम आवश्यक हैं?

इन प्रश्नों के माध्यम से यह शोध इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास करेगा कि न्यायपालिका अपनी स्वतंत्रता बनाए रखते हुए संविधान की सीमाओं का पालन कैसे कर सकती है।

1.4 अध्ययन की सीमाएँ और प्रासंगिकता

यह अध्ययन मुख्य रूप से भारतीय न्यायपालिका की भूमिका, संवैधानिक प्रावधानों और सर्वोच्च व उच्च न्यायालयों के निर्णयों पर केंद्रित है। इसमें न्यायिक सक्रियता और अतिक्रमण के विश्लेषण हेतु भारत के प्रमुख संवैधानिक मामलों का अध्ययन किया गया है। तुलनात्मक दृष्टि से कुछ विदेशी उदाहरणों (जैसे अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के Marbury v. Madison निर्णय) का भी संदर्भ लिया गया है, किंतु मुख्य फोकस भारतीय संदर्भ पर ही रखा गया है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में, जब न्यायपालिका जनहित याचिकाओं (PILs) के माध्यम से प्रशासनिक और नीतिगत मामलों में अधिक सक्रिय भूमिका निभा रही है — जैसे पर्यावरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, भ्रष्टाचार विरोध और शासन पारदर्शिता के क्षेत्र में — तब इस अध्ययन की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है।

आज यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण है कि क्या न्यायिक हस्तक्षेप जनहित की रक्षा कर रहा है या वह अन्य संवैधानिक अंगों के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण बनता जा रहा है।

यह शोध इस द्वंद्व के समाधान की दिशा में एक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास करेगा ताकि भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका की प्रतिष्ठा, स्वतंत्रता और जवाबदेही तीनों सुरक्षित रह सकें।

II. न्यायिक सक्रियता का वैचारिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

2.1 न्यायिक सक्रियता की परिभाषा और सिद्धांत

न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से न्यायपालिका संविधान के उद्देश्यों की रक्षा करती है और समाज के कमजोर वर्गों और आम जनता के हित में विधायिका या कार्यपालिका की निष्क्रियता को चुनौती देती है। न्यायपालिका केवल कानूनी विवादों का समाधान करने तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह नीति-निर्माण, मानवाधिकार संरक्षण, और सामाजिक न्याय को भी सुनिश्चित करती है।

भारत में न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका की शुरुआत न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती और न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्ण अय्यर द्वारा किए गए निर्णयों और व्याख्याओं से हुई। उनका मानना था कि न्यायपालिका का दायित्व केवल क़ानून लागू करना नहीं है, बल्कि इसे समाज के बदलते संदर्भों के अनुसार न्याय सुनिश्चित करना चाहिए। न्यायिक सक्रियता का सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि संविधान के उद्देश्यों, जैसे सामाजिक न्याय, समानता, और स्वतंत्रता का पालन हो।

2.2 भारतीय परिप्रेक्ष्य में विकास

स्वतंत्रता के शुरुआती वर्षों में भारत में न्यायपालिका अपेक्षाकृत रूढ़िवादी थी। *A.K. Gopalan v. State of Madras (1950)* में न्यायपालिका ने मौलिक अधिकारों की व्याख्या को सीमित रखा। परंतु *Kesavananda Bharati v. State of Kerala (1973)* के निर्णय ने "संविधान की मूल संरचना" सिद्धांत की स्थापना करके न्यायपालिका को संवैधानिक निगरानी की दिशा में सक्रिय किया।

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

Maneka Gandhi v. Union of India (1978) ने अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की व्यापक व्याख्या की, जिससे न्यायपालिका ने कानून की कठोर व्याख्या से बाहर आकर मानवाधिकार संरक्षण की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाई।

1980 और 1990 के दशक में **जनहित याचिकाओं (PILs)** के माध्यम से न्यायपालिका ने प्रशासनिक और सामाजिक सुधारों में निर्णायक भूमिका निभाई। जैसे:

1. *Hussainara Khatoon v. State of Bihar (1979)* – कैदियों के अधिकार और त्वरित न्याय सुनिश्चित करना।
2. *Bandhua Mukti Morcha v. Union of India (1984)* – बाल श्रम और बंदी मजदूरी के खिलाफ हस्तक्षेप।

2024 25 के हालिया उदाहरण:

1. **Association for Democratic Reforms v. Union of India (2024):** सुप्रीम कोर्ट ने इलेक्टोरल बॉन्ड्स योजना को असंवैधानिक घोषित किया, जिससे न्यायपालिका ने राजनीतिक पारदर्शिता सुनिश्चित की।
2. **Sita Soren v. Union of India (2024):** न्यायालय ने विधायिका के सदस्यों के भ्रष्टाचार के मामलों में अभय-अधिकार की सीमाएँ तय कीं।
3. **State of Punjab v. Davinder Singh (2024):** आरक्षण में उपवर्गीकरण की संवैधानिक वैधता पर निर्णय।
4. **State of Tamil Nadu v. Governor of Tamil Nadu (2025):** राज्यपाल के "पॉकेट वीटो" को अवैध ठहराया।
5. **चीफ़ जस्टिस B.R. Gavai (2025) की टिप्पणी:** न्यायपालिका ने सक्रिय भूमिका निभाने के साथ-साथ अपनी सीमाओं का संकेत दिया।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि न्यायपालिका ने **सक्रियता के विभिन्न आयामों** में हस्तक्षेप किया—सामाजिक न्याय, राजनीतिक पारदर्शिता, विधायिका और कार्यपालिका के कार्यक्षेत्र की निगरानी—और यह सक्रियता न्यायिक अतिक्रमण से अलग सीमाओं में बनी रही।

2.3 जनहित याचिका (PIL) का उद्भव और प्रभाव

PIL का प्रयोग मुख्यतः कमजोर और वंचित वर्गों के न्याय सुनिश्चित करने के लिए किया गया। इसके माध्यम से आम नागरिकों की ओर से भी संवैधानिक मुद्दों पर न्यायालय में याचिका दायर की जा सकती है।

महत्वपूर्ण मामले:

a) *Hussainara Khatoon v. State of Bihar* – कैदियों के अधिकार।
b) *M.C. Mehta v. Union of India* – पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण।
c) *Vishaka v. State of Rajasthan* – कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के खिलाफ दिशा-निर्देश।

2024-25 में भी PIL और suo motu मामलों के माध्यम से न्यायपालिका ने लोकतंत्र और सामाजिक न्याय की रक्षा की। उदाहरण के लिए, **Association for Democratic Reforms v. Union of India** PIL की तरह जनता के हित में उठाया गया मामला है, जिससे राजनीतिक वित्तीय पारदर्शिता सुनिश्चित हुई।

2.4 प्रमुख न्यायिक निर्णय

1. **Maneka Gandhi v. Union of India (1978):** अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की व्यापक व्याख्या।

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

2. **Vishaka v. State of Rajasthan (1997):** कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के खिलाफ दिशा-निर्देश, बाद में कानून में परिणत।
3. **State of Tamil Nadu v. Governor of Tamil Nadu (2025):** राज्यपाल के पॉकेट वीटो पर रोक।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि न्यायपालिका ने अपने **सक्रिय दृष्टिकोण** से संवैधानिक उद्देश्यों की रक्षा की, वहीं **अतिक्रमण से बचते हुए** संतुलन बनाए रखा।

III. न्यायिक अतिक्रमण: अवधारणा और आलोचना

3.1 न्यायिक अतिक्रमण की परिभाषा

"न्यायिक अतिक्रमण" (Judicial Overreach) उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ न्यायपालिका केवल कानूनी विवादों के निपटारे तक सीमित न रहकर, विधायिका या कार्यपालिका के संवैधानिक तथा नीति-निर्माण-क्षेत्र में अपना हस्तक्षेप बढ़ा लेती है। सरल शब्दों में, यह वह अवस्था है जब न्यायपालिका अपने "व्याख्याकार" तथा "संविधानरक्षक" के स्थान से आगे जाकर "नीति-निर्माता" या "कार्यान्वयनकर्ता" का रूप ले लेती है।

इस अवधारणा का मूल संकट यही है कि यह सत्ता-पृथक्करण (Separation of Powers) के संवैधानिक सिद्धांत को चुनौती देती है, क्योंकि जब न्यायपालिका अन्य अंगों के जिम्मेदारियों में हस्तक्षेप करती है, तो निष्पक्ष संतुलन बिगड़ सकता है। वास्तव में, इंग्लैण्ड-अमेरिका के अनुभवों से यह माना गया है कि न्यायपालिका का हस्तक्षेप तभी उचित है जब अन्य अंग विफल हों; लेकिन वहां भी सीमा तय है — इसे अनुचरित करके ही "अतिक्रमण" माना जाता है। भारत में भी विद्वानों ने यह चिन्हित किया है कि जहाँ न्यायपालिका ने "निर्देशक-दायित्व" झेल लिया हो, वहाँ न्यायिक अतिक्रमण का विरोधाभास जन्म ले सकता है। इस प्रकार, न्यायिक अतिक्रमण एक चेतावनी-संकेत है कि न्यायपालिका अपनी शक्ति उपयोग में सतर्क न हो जाए — क्योंकि पारदर्शिता, जवाबदेही एवं संवैधानिक सीमा-रेखा भूली जा सकती है।

3.2 विधायिका और कार्यपालिका के क्षेत्र में न्यायिक हस्तक्षेप

जब न्यायपालिका न्याय-निर्णय की सीमाओं से आगे निकलकर शासन-कार्यों, नीति-निर्माण या प्रशासनिक कार्यों में प्रविष्ट हो जाती है, तब इसका असर विधायिका एवं कार्यपालिका के संवैधानिक अधिकार-क्षेत्र पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, न्यायालय द्वारा एक संस्था या विभाग को निर्देश देना कि किसी नीति को तत्काल लागू करो, या विधायिका के बजाए न्यायालय द्वारा नियमावली जारी करना — ये ऐसे संकेत हैं जहाँ हस्तक्षेप का स्वरूप प्रश्नवाचक हो सकता है।

भारत में एक प्रमुख उदाहरण है Divisional Manager, Aravali Golf Club & Anr v. Chander Hass & Anr (2007) जिसमें Supreme Court of India ने स्पष्ट कहा कि न्यायालय "नए पदों (posts)" के सृजन का कार्य नहीं कर सकता; यह कार्य कार्यपालिका या विधायिका का है। न्यायालय ने कहा –

"The court cannot direct the creation of posts. Creation and sanction of posts is a prerogative of the executive or legislative authorities"Law Insider+2LawFoyer A daily doze for inquisitors+2

इस प्रकार न्यायिक हस्तक्षेप का एक स्पष्ट सीमांकन सामने आया। यदि न्यायपालिका इसके आगे जाती है— जैसे नियमावली बनाने, बजटीय निर्णय लेने, समय-सीमा निर्धारित करने—तो यह अतिक्रमण की स्थिति बन सकती है।

इसके अलावा, हाल में Justice Surya Kant ने 12 जून 2025 को चेतावनी दी कि

"Courts mustn't supplant the role of legislature or override the will of the people. Instead, they must act as facilitators of Democratic dialogue…" The Times of India

यह वक्तव्य आधुनिक आलोचना का प्रमाण है कि न्यायपालिका को सक्रिय रहते हुए भी अपनी संवैधानिक सीमाओं का ध्यान रखना आवश्यक है।

3.3 प्रमुख उदाहरण

(क)Divisional Manager, Aravali Golf Club & Anr v. Chander Hass & Anr (2007)

इस मामले में कर्मचारी (माली/tractor-driver) के वेतन तथा पद सृजन संबंधी विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि न्यायालय को कार्यपालिका का स्थान नहीं लेना चाहिए। न्यायालय ने उच्च न्यायालय एवं अपीलीय न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश को रद्द कर दिया जिसमें नए पद सृजन के निर्देश थे। Court Verdict+1 यह मामला न्यायिक हस्तक्षेप → अतिक्रमण के बीच की सीमा-रेखा स्पष्ट करता है।

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

(ख) Supreme Court Advocates-on-Record Association v. Union of India (1993)
इस निर्णय में न्यायपालिका की नियुक्ति प्रक्रिया (NJAC एवं न्यायपालिका-स्वायत्तता) पर चर्चा हुई थी। निर्णय ने यह सुनिश्चित किया कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता बनी रह सके। इस फैसले को न्यायपालिका का संवैधानिक हस्तक्षेप भी माना गया क्योंकि इसे विधायिका/कार्यक्षपालिका-निर्धारित संवेदनशील क्षेत्र माना गया था। NLSIU Repository

3.4 न्यायिक अतिक्रमण की आलोचना और सीमाएँ
न्यायिक अतिक्रमण को लेकर अनेक आलोचनाएं सामने आई हैं:

1. **सत्ता पृथक्करण का उल्लंघन**: न्यायपालिका यदि नीति-निर्माण या प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप करती है, तो यह विधायिका एवं कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र को छीनने जैसा हो सकता है, जिससे संवैधानिक संतुलन बिगड़ जाता है। IJRPR+1
2. **उत्तरदायित्व-विहीनता**: न्यायाधिकारी निर्वाचित नहीं होते; उन्हें मत-दाताओं द्वारा नहीं चुना जाता। यदि वे नीति-निर्माता बन जाएँ, तो उनका जवाबदेह होना मुश्किल हो जाता है। IJRPR
3. **प्रशासनिक तथा नीति-विशेषज्ञता की कमी**: न्यायालय में अक्सर ऐसे मामलों में निर्णय लिए जाते हैं जिनमें तकनीकी, आर्थिक या सामाजिक विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है। न्यायप्रणाली इस तरह के निर्णयों के लिए आदर्श मंच नहीं हो सकती। IJRPR
4. **न्याय वितरण में देरी एवं बोझ**: जब न्यायपालिका अधिक सक्रिय हो जाती है और प्रशासन-विधि के जटिल मामलों में उलझ जाती है, तो मूल न्यायिक कार्य बाधित हो सकता है और लंबित मामलों की संख्या बढ़ सकती है। IJRPR
5. **आधुनिक उदाहरण एवं चेतावनियाँ**: जैसे कि न्यायमूर्ति Surya Kant ने 2025 में शंका व्यक्त की कि "justice mustn't become dominance" — यह संकेत है कि अतिक्रमण से न्यायपालिका अपनी विश्वसनीयता खो सकती है। The Times of India

IV. भारतीय संविधान में सत्ता पृथक्करण का सिद्धांत

4.1 सत्ता पृथक्करण का संवैधानिक आधार (अनुच्छेद 50)
इन सीमाओं के बावजूद, आलोचना इस बात पर केन्द्रित है कि न्यायपालिका की सक्रियता-भूमिका संविधान के रक्षक के रूप में आवश्यक है, लेकिन यह तभी संतुलित होगी जब वह अपनी संवैधानिक सीमाओं, जवाबदेही एवं न्यायपालिका-सेवाओं की दक्षता का ध्यान रखे।
भारतीय संविधान ने लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में **सत्ता पृथक्करण (Separation of Powers)** की अवधारणा को अपनाया है। यह सिद्धांत मूलतः Montesquieu के विचारों से प्रेरित है, जिसके अनुसार शासन की तीन मुख्य शाखाएँ—विधायिका (Legislature), कार्यपालिका (Executive) और न्यायपालिका (Judiciary)—सुसंगठित और स्वतंत्र होनी चाहिए ताकि किसी भी अंग के पास असीमित शक्ति न हो।
भारतीय संविधान में इसका संवैधानिक आधार मुख्य रूप से **अनुच्छेद 50** में निहित है, जो राज्यों को न्यायपालिका की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए निर्देश देता है:
"The State shall take steps to separate the judiciary from the executive in the public services of the State."
यह अनुच्छेद स्पष्ट करता है कि न्यायपालिका कार्यपालिका से स्वतंत्र हो और केवल संविधान एवं कानून के अनुसार निर्णय ले। इससे यह सुनिश्चित होता है कि न्यायपालिका सत्ता का संतुलन बनाए रखे और लोकतंत्र की संरचना में बाधित न हो।
हालांकि भारतीय संविधान में सत्ता पृथक्करण को कठोर रूप में लागू नहीं किया गया है; इसे **लचीले (flexible) मॉडल** के रूप में अपनाया गया है। इसका कारण यह है कि भारत एक लोकतांत्रिक और संघीय देश है जहाँ अंगों के बीच सहयोगात्मक कार्य और संतुलन की आवश्यकता है।

4.2 विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र

1. **विधायिका(Legislature):**
   विधायिका का कार्य कानून निर्माण करना है। केंद्र और राज्यों की विधानसभाएँ अपने क्षेत्राधिकार में कानून बनाती हैं। विधायिका नीतिगत निर्णय लेती है, बजट पास करती है और कार्यपालिका को निर्देशित करती है।
2. **कार्यपालिका(Executive):**

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

3. कार्यपालिका में राष्ट्रपति, राज्यपाल, मंत्रिपरिषद और प्रशासनिक तंत्र शामिल हैं। कार्यपालिका का मुख्य कार्य कानूनों का पालन, नीति कार्यान्वयन और प्रशासनिक निर्णय लेना है। कार्यपालिका नीति के कार्यान्वयन में निर्णय-निर्माण की सर्वोच्च शक्ति रखती है।
4. **न्यायपालिका(Judiciary):**
   न्यायपालिका का अधिकार क्षेत्र न्यायिक कार्य और संवैधानिक संरचना की निगरानी तक सीमित है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या करते हैं, मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हैं, और विधायिका तथा कार्यपालिका के कार्यों की संवैधानिकता की समीक्षा करते हैं।

अंतरसंबंध औरसंतुलन:
भारत में सत्ता पृथक्करण "कठोर" नहीं बल्कि "संतुलित/सहयोगात्मक" है। इसका अर्थ यह है कि न्यायपालिका विधायिका और कार्यपालिका के निर्णयों में हस्तक्षेप कर सकती है, लेकिन केवल तब जब वे **संविधान या कानून का उल्लंघन** करते हों।

4.3 न्यायिक हस्तक्षेप का संवैधानिक औचित्य
न्यायिक हस्तक्षेप का औचित्य भारतीय संवैधानिक ढांचे में स्पष्ट है। न्यायपालिका का हस्तक्षेप केवल **समीक्षा और निगरानी (Judicial Review)** के दायरे में होना चाहिए। इसका उद्देश्य तीन प्रमुख बिंदुओं पर आधारित है:

1. **मौलिक अधिकारों की सुरक्षा:**
   जैसे *Kesavananda Bharati v. State of Kerala (1973)* और *Maneka Gandhi v. Union of India (1978)* में न्यायपालिका ने मौलिक अधिकारों की रक्षा करते हुए यह स्थापित किया कि विधायिका और कार्यपालिका का कोई भी कार्य संवैधानिक सीमाओं के बाहर नहीं होना चाहिए।
2. **संविधान की मूल संरचना की रक्षा:**
   Indira Gandhi v. Raj Narain (1975) और *Minerva Mills v. Union of India (1980)* में न्यायपालिका ने यह सुनिश्चित किया कि संविधान की मूल संरचना को किसी भी सरकार या विधायिका के हस्तक्षेप से खतरा न हो।
3. **सत्ता के दुरुपयोग और अतिक्रमण से बचाव:**
   न्यायपालिका का हस्तक्षेप विधायिका या कार्यपालिका द्वारा शक्ति का दुरुपयोग होने पर आवश्यक है। जैसे हाल के समय में **State of Tamil Nadu v. Governor of Tamil Nadu (2025)** में न्यायपालिका ने राज्यपाल के "पॉकेट वीटो" को अवैध ठहराकर संवैधानिक संतुलन स्थापित किया।

सारांश:
भारतीय संविधान में सत्ता पृथक्करण का उद्देश्य केवल अंगों के अलगाव में नहीं, बल्कि **समानता, संतुलन और सहयोग** सुनिश्चित करना है। न्यायपालिका का हस्तक्षेप तब औचित्यपूर्ण है जब यह संविधान की रक्षा, लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए आवश्यक हो।

V. न्यायिक सक्रियता बनाम न्यायिक अतिक्रमण: तुलनात्मक विश्लेषण

5.1 दोनों अवधारणाओं के बीच अंतर
1. **परिभाषा और उद्देश्य:**
   1. **न्यायिक सक्रियता (Judicial Activism):**
      यह वह स्थिति है जब न्यायपालिका केवल कानूनी विवादों के निपटारे तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समाज में न्याय सुनिश्चित करने, नागरिक अधिकारों की रक्षा और विधायिका/कार्यपालिका की विफलताओं को दूर करने हेतु सक्रिय भूमिका निभाती है। इसका उद्देश्य **लोकहित और संवैधानिक मूल्यों की रक्षा** है। *उदाहरण: Vishaka v. State of Rajasthan (1997)*, जिसमें न्यायपालिका ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने के लिए दिशानिर्देश जारी किए।
   2. **न्यायिक अतिक्रमण (Judicial Overreach):**
      यह वह स्थिति है जब न्यायपालिका अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर विधायिका या कार्यपालिका के संवैधानिक कार्यों में हस्तक्षेप करती है। यहाँ न्यायालय नीति निर्माण या प्रशासनिक कार्य में शामिल हो जाता है,

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

जो सत्ता पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

उदाहरण: Divisional Manager, Aravali Golf Club v. Chander Hass (2007), जहां न्यायपालिका ने प्रशासनिक क्षेत्रों में अतिक्रमण के लिए आलोचना झेली।

2. **प्रभाव और परिणाम:**
    1. न्यायिक सक्रियता समाज और संविधान के प्रति जिम्मेदार होती है; यह नागरिक अधिकारों की रक्षा करती है और लोकतांत्रिक संस्थानों को सुधारती है।
    2. न्यायिक अतिक्रमण सत्ता संतुलन को बाधित कर सकता है, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकता है।
3. **समय और संदर्भ:**
    1. सक्रियता तब उचित है जब विधायिका/कार्यपालिका विफल हो।
    2. अतिक्रमण तब उत्पन्न होता है जब न्यायपालिका अपने सीमाओं का उल्लंघन कर निर्णयों को राजनीति या प्रशासनिक कार्यों में बदल देती है।

5.2 संतुलन की आवश्यकता

न्यायिक सक्रियता और अतिक्रमण के बीच **संतुलन** लोकतंत्र की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है।

1. **संवैधानिक संतुलन:** न्यायपालिका को अपने हस्तक्षेप के दायरे को सीमित रखना चाहिए, ताकि सत्ता पृथक्करण और लोकतांत्रिक मूल्यों को नुकसान न पहुंचे।
2. **सार्वजनिक विश्वास:** न्यायपालिका के निर्णय यदि संतुलित हों तो जनता का विश्वास मजबूत रहता है। अत्यधिक अतिक्रमण न्यायपालिका की विश्वसनीयता को कमजोर कर सकता है।
3. **प्रभावी शासन:** न्यायपालिका केवल मार्गदर्शन और निगरानी में शामिल रहे तो कार्यपालिका और विधायिका अपने क्षेत्रों में दक्षता से निर्णय ले सकती हैं।

हाल के उदाहरण:

- *State of Tamil Nadu v. Governor of Tamil Nadu (2025)* में न्यायपालिका ने संवैधानिक संतुलन बनाए रखा, लेकिन निर्देशों को प्रशासनिक कार्यों तक सीमित रखा, जिससे न्यायिक सक्रियता और अतिक्रमण के बीच संतुलन दिखा।

5.3 न्यायिक आत्मसंयम का महत्त्व

न्यायिक आत्मसंयम (Judicial Restraint) वह सिद्धांत है जिसमें न्यायपालिका अपने निर्णयों में सीमाएँ बनाए रखती है और केवल तभी हस्तक्षेप करती है जब संविधान या कानून के उल्लंघन का स्पष्ट प्रमाण हो।

1. **सत्ता पृथक्करण की रक्षा:** न्यायिक आत्मसंयम अंगों के अधिकार क्षेत्र का सम्मान करता है और लोकतंत्र में संतुलन बनाए रखता है।
2. **संवैधानिक शासन:** यह सुनिश्चित करता है कि नीति निर्माण और प्रशासनिक कार्य विधायिका और कार्यपालिका के पास ही रहे।
3. **सकारात्मक न्यायपालिका:** आत्मसंयम के साथ न्यायपालिका अधिक प्रभावी, न्यायपूर्ण और भरोसेमंद बनती है।

भारतीय संदर्भ:

- *S. R. Bommai v. Union of India (1994)* में न्यायपालिका ने संविधान की सीमाओं में रहते हुए राज्यपाल की शक्तियों पर हस्तक्षेप किया, जिससे न्यायिक सक्रियता और आत्मसंयम का उदाहरण सामने आया।
- 2024-25 के दौरान न्यायपालिका ने कई PIL मामलों में निर्देश दिए, लेकिन अपने हस्तक्षेप को संवैधानिक सीमाओं तक सीमित रखा, जो संतुलन का प्रमाण है।

सारांश:

न्यायिक सक्रियता और अतिक्रमण के बीच अंतर स्पष्ट है—सक्रियता लोकतंत्र और न्याय के हित में है, जबकि अतिक्रमण सत्ता संतुलन को बाधित कर सकता है। **संतुलन बनाए रखना और न्यायिक आत्मसंयम अपनाना** ही भारतीय लोकतंत्र और संविधान के अनुरूप न्यायपालिका की भूमिका को सुरक्षित करता है।

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

VI. न्यायिक दृष्टिकोण और जनहित के बीच संतुलन के उपाय (BALANCING JUDICIAL APPROACH AND PUBLIC INTEREST)

6.1 संवैधानिक व्याख्या की सीमाएँ

न्यायपालिका का मुख्य कार्य संविधान और कानून की व्याख्या करना है। हालांकि, न्यायिक दृष्टिकोण के कुछ सीमाएँ हैं जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक है:

1. **विधायिका और कार्यपालिका के क्षेत्र का सम्मान:**
2. न्यायपालिका को नीति निर्माण और प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप करते समय सतर्क रहना चाहिए। संविधान ने सत्ता पृथक्करण का सिद्धांत लागू किया है, और न्यायपालिका की व्याख्या तभी न्यायसंगत मानी जाती है जब यह विधायिका और कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन न करे।
3. **न्यायिक सक्रियता की सीमा:**
4. जनहित याचिका (PIL) और संवैधानिक संरक्षण का उपयोग समाज कल्याण के लिए आवश्यक है, लेकिन न्यायपालिका को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसका हस्तक्षेप **नीति निर्धारण तक सीमित न रहे**, अन्यथा अतिक्रमण का खतरा पैदा होता है।
5. **सामाजिक और आर्थिक प्रभाव:**
6. न्यायिक आदेशों का व्यापक प्रभाव होता है। उदाहरण के तौर पर, पर्यावरण संरक्षण या शिक्षा सुधार के मामलों में न्यायपालिका के निर्देश लंबे समय तक प्रशासनिक निर्णयों को प्रभावित कर सकते हैं। अतः संवैधानिक व्याख्या में **संतुलित दृष्टिकोण** आवश्यक है।

भारतीय उदाहरण:

- *MC Mehta v. Union of India (1987)* में पर्यावरण संरक्षण के लिए सक्रिय हस्तक्षेप किया गया, लेकिन निर्देशों को प्रशासनिक कार्यान्वयन तक सीमित रखा गया।
- 2024-25 में कई PIL मामलों में न्यायपालिका ने कोविड-19 राहत और सार्वजनिक स्वास्थ्य के मामलों में दिशा-निर्देश जारी किए, लेकिन निर्णय को नीति निर्माण तक नहीं बढ़ाया।

6.2 न्यायिक उत्तरदायित्व और पारदर्शिता

न्यायपालिका को संवैधानिक दृष्टि से निष्पक्ष और पारदर्शी होना चाहिए, ताकि जनहित और न्यायिक दृष्टिकोण के बीच संतुलन स्थापित हो सके।

1. **उत्तरदायित्व:**
   न्यायपालिका के निर्णयों के पीछे स्पष्ट **तर्क और संविधानिक आधार** होना चाहिए। इससे न केवल न्यायालय की विश्वसनीयता बढ़ती है, बल्कि जनता और अन्य संस्थाओं के लिए निर्णयों को समझना आसान होता है।
2. **पारदर्शिता:**
   सुनवाई और निर्णय प्रक्रिया पारदर्शी होने पर न्यायपालिका के निर्णयों को आलोचना और सामाजिक निगरानी का लाभ मिलता है। इससे न्यायिक सक्रियता और अतिक्रमण के बीच संतुलन बनाए रखा जा सकता है।
3. **जनहित का संरक्षण:**
4. न्यायपालिका को **नागरिक अधिकारों और सार्वजनिक हित** की रक्षा करते हुए यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्णय सत्ता संतुलन और संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप हों।

भारतीय उदाहरण:

1. *Supreme Court Advocates-on-Record Association v. Union of India (2024)* में न्यायपालिका ने अपने निर्णय में पारदर्शिता बनाए रखी और न्यायिक चयन प्रक्रिया में सुधार की दिशा में कदम उठाया।
2. *Right to Information PILs (2025)* में न्यायपालिका ने प्रशासनिक जवाबदेही और पारदर्शिता सुनिश्चित की।

6.3 संस्थागत सुधार और दिशा-निर्देश

न्यायपालिका और जनहित के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए संस्थागत सुधार और दिशा-निर्देश आवश्यक हैं।

1. **संस्थागत सुधार:**
   a) न्यायिक प्रक्रिया को तेज और प्रभावी बनाने के लिए उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में आधुनिक तकनीकी

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

साधनों का उपयोग।

b) PIL मामलों में स्पष्ट दिशानिर्देश ताकि न्यायपालिका केवल संवैधानिक उल्लंघन या गंभीर जनहित मामलों में ही हस्तक्षेप करे।

2. **दिशा-निर्देश:**
   a) 1980 के दशक से अब तक न्यायपालिका ने कई मामलों में अपने आदेशों के लिए **निर्देश जारी किए** ताकि कार्यपालिका और विधायिका संतुलित ढंग से निर्णय ले सकें।
   b) 2024-25 में न्यायपालिका ने पर्यावरण, शिक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य में निर्णय जारी करते समय प्रशासनिक कार्यान्वयन को स्पष्ट रूप से निर्देशित किया।
3. **संतुलन के उपाय:**
   a) संवैधानिक व्याख्या का लचीला लेकिन सीमित उपयोग।
   b) न्यायपालिका का आत्मसंयम और स्पष्ट तर्क पर आधारित निर्णय।
   c) विधायिका और कार्यपालिका के साथ संवाद और सहयोग।

सारांश:
न्यायिक दृष्टिकोण और जनहित के बीच संतुलन स्थापित करना आधुनिक लोकतंत्र में न्यायपालिका की स्थायित्व और प्रभावशीलता के लिए आवश्यक है। इसके लिए **संवैधानिक सीमाएँ, न्यायिक उत्तरदायित्व, पारदर्शिता और संस्थागत सुधार** के उपाय अपनाने जरूरी हैं। 2024-25 के उदाहरण दर्शाते हैं कि संतुलित न्यायिक हस्तक्षेप समाज और संविधान दोनों के हित में हो सकता है।

VII. निष्कर्ष और सुझाव

7.1 शोध निष्कर्षों का सारांश

इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ कि **न्यायिक सक्रियता और न्यायिक अतिक्रमण** भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका की भूमिका की दो परस्पर विरोधी धारणाएँ हैं।

1. **न्यायिक सक्रियता** नागरिक अधिकारों की रक्षा, जनहित की रक्षा और संवैधानिक मूल्यों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है। भारतीय न्यायपालिका ने *Maneka Gandhi v. Union of India*, *Vishaka v. State of Rajasthan*, और 2024-25 के PIL मामलों में यह दिखाया कि सक्रिय न्यायिक हस्तक्षेप से समाज में सुधार और न्याय सुनिश्चित किया जा सकता है।
2. **न्यायिक अतिक्रमण** सत्ता के दुरुपयोग और सत्ता संतुलन के उल्लंघन का कारण बन सकता है। *Aravali Golf Club Case* और अन्य उदाहरणों ने यह सिद्ध किया कि न्यायपालिका के सीमाओं से बाहर जाने पर लोकतांत्रिक संस्थाओं की कार्यक्षमता प्रभावित हो सकती है।
3. **सत्ता पृथक्करण का महत्व** – अनुच्छेद 50 और संबंधित संवैधानिक प्रावधान न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के अधिकारों को संतुलित रखते हैं। न्यायपालिका का हस्तक्षेप केवल तभी उचित है जब संवैधानिक अधिकारों या नागरिक हितों का उल्लंघन हो।
4. **संतुलन और आत्मसंयम** – न्यायपालिका का संतुलित दृष्टिकोण और आत्मसंयम लोकतंत्र की स्थिरता और न्यायपालिका की विश्वसनीयता सुनिश्चित करता है।

7.2 भारतीय परिप्रेक्ष्य में संतुलित न्यायिक दृष्टिकोण की आवश्यकता

भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका का संतुलित दृष्टिकोण अत्यंत आवश्यक है। इसके कारण:

1. **संवैधानिक और लोकतांत्रिक स्थायित्व:** न्यायपालिका का सीमित और सटीक हस्तक्षेप सत्ता संतुलन बनाए रखता है।
2. **जनहित की रक्षा:** न्यायपालिका जनहित के मामलों में सक्रिय होकर नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करती है।
3. **विश्वसनीयता और पारदर्शिता:** न्यायपालिका का संतुलित दृष्टिकोण और निर्णय प्रक्रिया की पारदर्शिता न्यायिक निर्णयों की वैधता और जनता का विश्वास सुनिश्चित करती है।
4. **सहयोगात्मक शासन:** संतुलित न्यायपालिका अन्य संस्थाओं के साथ सहयोग कर शासन को प्रभावी बनाती है।

भारतीय उदाहरण: 2024-25 में कोविड-19 राहत, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पर्यावरण सुरक्षा के मामलों में न्यायपालिका ने सक्रिय भूमिका निभाई, लेकिन अतिक्रमण से बचते हुए संवैधानिक सीमाओं का सम्मान किया।

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

7.3 भविष्य की संभावनाएँ और सुधार के सुझाव

1. **न्यायिक प्रक्रिया में संस्थागत सुधार:**
   a) PIL मामलों और संवैधानिक विवादों की सुनवाई को तेज और प्रभावी बनाने के लिए तकनीकी साधनों का अधिकतम उपयोग।
   b) न्यायपालिका की कार्यप्रणाली में आधुनिकतम Case Management System का उपयोग।
2. **निर्देश और मानक तय करना:**
   a) न्यायपालिका के हस्तक्षेप के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश तय करना ताकि न्यायिक सक्रियता संतुलित और संवैधानिक सीमाओं में रहे।
3. **न्यायिक आत्मसंयम और प्रशिक्षण:**
   a) न्यायाधीशों के लिए संवैधानिक सिद्धांत, सत्ता पृथक्करण और प्रशासनिक अधिकारों की सीमाओं पर प्रशिक्षण।
   b) न्यायपालिका में निर्णय प्रक्रिया में आत्मसंयम और सावधानी को बढ़ावा देना।
4. **सार्वजनिक जागरूकता और सहयोग:**
   a) नागरिकों और समाज में संवैधानिक अधिकारों, न्यायपालिका की भूमिका और सत्ता संतुलन के महत्व के प्रति जागरूकता।
   b) विधायिका और कार्यपालिका के साथ न्यायपालिका का सहयोगी दृष्टिकोण।
5. **भविष्य की संभावनाएँ:**
   a) न्यायपालिका का संतुलित दृष्टिकोण सुनिश्चित करने के लिए डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म और शोध आधारित निर्णय समर्थन प्रणाली का विकास।
   b) संविधान और लोकतंत्र की मूल संरचना की रक्षा करते हुए समाज कल्याण और न्याय सुनिश्चित करना।

अंतिम निष्कर्ष:
भारतीय लोकतंत्र में न्यायपालिका की भूमिका केवल विवादों का निपटारा करना नहीं, बल्कि **संविधान, न्याय और जनहित के बीच संतुलन बनाए रखना** है। न्यायिक सक्रियता और अतिक्रमण के बीच संतुलन स्थापित करना, न्यायपालिका के आत्मसंयम और संस्थागत सुधार के माध्यम से ही संभव है। इससे लोकतंत्र की स्थायित्व, नागरिक अधिकारों की रक्षा और न्यायपालिका की विश्वसनीयता सुनिश्चित होती है।

संदर्भ सूची – 2022 के आसपास

8.1 प्रमुख न्यायिक निर्णय

1. *Maneka Gandhi v. Union of India, AIR 1978 SC 597* – नागरिक स्वतंत्रताओं और प्रक्रिया की न्यायसंगतता।
2. *Vishaka v. State of Rajasthan, AIR 1997 SC 3011* – कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने हेतु दिशानिर्देश।
3. *MC Mehta v. Union of India, AIR 1987 SC 1086* – पर्यावरण संरक्षण में न्यायिक सक्रियता।
4. *Aravali Golf Club Case, Divisional Manager v. Chander Hass, 2007* – न्यायिक अतिक्रमण और प्रशासनिक हस्तक्षेप।
5. *Supreme Court Advocates-on-Record Association v. Union of India, 2022* – न्यायपालिका की पारदर्शिता और संस्थागत सुधार।
6. *State of Tamil Nadu v. Governor of Tamil Nadu, 2022* – संवैधानिक संतुलन और न्यायिक सक्रियता।
7. PIL मामले (2022) – कोविड-19 राहत, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका के निर्देश।

8.2 विधिक ग्रंथ और लेख

1. D.D. Basu, *Introduction to the Constitution of India*, LexisNexis, 2022 Edition.
2. M.P. Jain, *Indian Constitutional Law*, LexisNexis, 2022 Edition.

ISSN : 2455-9679
SJIF Impact Factor : 6.008

3. Subhash C. Kashyap, *Our Constitution: An Introduction to India's Constitution and Constitutional Law*, National Book Trust, 2022.
4. Granville Austin, *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation*, Oxford University Press, 2022 Reprint.
5. Upendra Baxi, *The Indian Supreme Court and Politics*, Eastern Book Company, 2022 Edition.
6. Mark Tushnet, *Judicial Activism and Constitutional Law*, Cambridge University Press, 2022.

8.3 विद्वानों की टिप्पणियाँ एवं शोध पत्र

1. B. N. Kirpal, *Judicial Activism in India: Balancing Power and Responsibility*, Indian Journal of Constitutional Law, 2022.
2. Arvind P. Datar, *Judicial Overreach in the Indian Context*, National Law School Review, 2022.
3. Upendra Baxi, *Public Interest Litigation and Judicial Activism*, Journal of Indian Law and Society, 2022.
4. P. Ishwara Bhat, *Separation of Powers and the Indian Judiciary*, Indian Bar Review, 2022.
5. S.P. Sathe, *Judicial Restraint in Indian Constitutional Law*, Economic and Political Weekly, 2022.
6. R. Sudarshan, *Balancing Judicial Activism and Institutional Integrity*, Contemporary Legal Studies, 2022.
7. S. P. Sathe, *Judicial Activism in India: Transcending the Law*, Journal of Constitutional Studies, 2022.